'प्रेम'— एक दिव्य अनुभूति

मानव जीवन सृष्टि् रचियता काल निरंझन भगवन की एक बहुत ही अदभुत श्रेष्ठ रचना है जिसे पांच तत्वों अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु और आकाश द्वारा निर्मित किया गया है और श्रेष्ठ इसलिये चूंकि सृष्टि् का निर्माण भी इन्हीं पांच तत्वों द्वारा हुआ है। हां, मनुष्य जीवन के अतिरिक्त भी इस सृष्टि् में एक से लेकर चार तत्वों वाले जीव विद्‌मान हैं। जैसे कि ये समूचा जगत इस बात को भलि भांति जानता है कोई एक ऐसी ताकत है जो समस्त संसार को चलायेमान रक्खे हुऐ है। उस एक ताकत को हम सभी जन भगवान, ईश्वर, अल्लाह, एक औंकार, नारायण ईत्यादि नामों से जानते हैं, बल्कि मानते हैं क्योंकि अगर जानते होते तो निष्चित है कि भ्रमित नहीं हुऐ होते। इन सभी को हम अपने—अपने तौर तरीकों से, पुरानी रूढ़ीवादिताओं और मानयताओं के चलते पूजते और भजते हैं, और अगर देखा जाये तो वह भी अपने स्वार्थों की ही पूर्ती के लिये। काल भगवन इस समस्त संसार को तीन देवों, आद्यशक्ति व तामाम देवी देवताओं के सहयोग से स्वयं को 'सुन्न' में तथा मानव के भीतर सुश्मिना मध्य 'मन' रूप में स्थापित करके और त्रिलोकि के सारे कार्यों को अपनी मौन स्वीकृति और निगरानी में ही चला रहे हैं। पूरी त्रिलोकि पर काल भगवन का ही अधिपत्य है तथा इस साम्राज्य को उन्होंने चौथे लोक के मालिक ''साहिब सतपुरूष जी'' जो हम सब आत्माओं (हंसात्माओं) के असली पिता हैं, से राज करने के लिये बड़े तप और बंदगी द्वारा प्राप्त किया है। दरअसल काल भगवन भी ''साहिब सत्यपुरूष जी'' के ही पांचवे पुत्र हैं (इसकी विस्तृत जानकारी के लिये ग्रंथ अमरसागर को अवश्य पढ़ें)। बडी़ विचित्र विडंम्भना देखें कि हम सभी आत्मांओं के काल भगवन के अधीन होने के कारण और इन्हीं की पूजा अर्चना और भक्तियां करने के कारण हम सब जगत के जीव इन्हें ही अपना असली पिता माने बैठे हैं। और इस कदर माने बैठे हैं कि सत्य क्या है अन्जाने वश यही जानने का प्रयास तक भी नहीं करते, जानना तो दूर, अंधविश्वासों में पूर्णतः डूबे कुछ सुनना भी नहीं चाहते कि हम आखिर हैं कौन ? कहां से हम्हें यहां लाया गया था और अंततः कहां हम्हें जाना है ? हमारा अस्तित्व क्या है, पहचान क्या है, कौन हम सब आत्मांओं का मालिक है, किसके हम अंश हैं और वास्तव में हमारा असली पिता कौन है ? इन सब प्रशणों के उत्तर के लिये कभी सोचा है हमने कि इनका निवारण कहां हो सकता है ? कभी ज़रा सी हूक भी नहीं उठती हमारे अंदर कि हम अपने मूल स्त्रोत को जान पायें, अपने निजघर को जान पायें ? और अगर कहीं हमने भूल से भी इस ओर अपने कदम नहीं बड़ाये तो

तो मानें या ना मानें चौला त्यागनें के उपरांत इससे होने वाली हानी का शायद अंदाज़ा भी नहीं हम लगा सकते। और यह तय है कि उस वक्त हम अपनी बाज़ी निष्चय ही हार चुके होंगे, और हमारे पास सिवाये पछतावे के और कुछ हाथ नहीं लगेगा।

क्योंकि अन्जाने वश जितने भी प्रकार की भक्तियां हम सभी जीव इस त्रिलोकि जगत में किये जा रहे हैं वे सभी की सभी भक्तियां उच्चस्तरीय होते हुऐ भी पूर्ण नहीं हैं। हम इस तीन लोक में बुरी तरहं से काल भगवन के मोहपाष में बंधे और अथाह ग़हरे समुंद्र में कयामतों दर कयामतों से कैद और भ्रमित हुऐ पड़े हैं और जन्मों–जन्मों से अनेकों योनियों में बारी–बारी से भटके चले आ रहे हैं। ध्यान रहे कि काल भगवन की सारी की सारी व्यवस्था जन्मों–जन्मों से सैंचित कर्म प्रालब्ध बंधन नियमों और सिधान्तों के आधार पर कार्य करती है, जिसके तहत सभी तत्वों के जीव इन सभी पूर्व निर्धारित नियमित कार्य प्रणाली के प्रणामों को भौगने के लिये बाध्य हैं और निरंतर इसी त्रिलोकि नगरी में ही विवशता पूर्ण जन्मते और मरते रहते हैं। और अन्जाने वश कभी भी हम इस काल चक्र से बाहिर चौथे लोक की ओर जाने के विषय में सोचते भर भी नहीं। हर कयामत में यह सारा घटना क्रम पुनः घटित होता है। (इस सब की पूरी जानकारी के लिये ग्रंथ अमरसागर अवश्य पढ़ें)। इस कर्म प्रधान व्यवस्था में केवल हम मानव जीवन के अंदर ही नये कर्म सैंचित कर सकते हैं शेष सभी योनियां मात्र भौग योनियां भर ही हैं। हांलाकि इस सब की जानकारी इस संसार की धार्मिक पुस्तकें जैसे वेद, ग्रंथ, पुराण, उपनिषद् और अन्य धर्मों की भी कंई पुस्तकें देती हैं परन्तु इस प्रालब्ध कर्म बंधन से निजात कैसे मिले इसके बारे में कोई नहीं बता रहा। अच्छे कर्म करो तो स्वर्ग आदि सहित लोक लुकांतरों की यात्रायें कर सकते हो और बुरे कर्मों द्वारा नाना प्रकार के नर्क ईत्यादि उपलब्ध हैं, सतगुरू परमहंस 'वे नाम' साहिब जी की वाणी अनुसार अच्छे कर्म सोने की बेड़ी हैं और बुरे कर्म लोहे की बेड़ी। अच्छे अथ्वा बुरे जैसे भी, कर्म तो हो ही रहे हैं, इनसे छुटकारा प्राप्त कैसे हो ? ऐसा क्या किया जाये कि कर्म बंधन से ही मुक्त हो जायें ? एक बात तो कदापि समझ में नहीं आती कि इन्सान आखिर छूटना क्युं नहीं चाहता, खोने के लिये उसके पास तो कुछ है भी नहीं, फिर इस संसार से इतना मोह हो गया है या फिर किसी ओर पर भरोसा नहीं बन पा रहा ? खैर यह तो हर एक का अपना विचार है। प्रशण ये उठता है कि अगर छुटकारा होना है, मुक्त होना है, पूर्णतः मोक्ष प्राप्त करके अपने असली पिता के घर जाना है, तो इस से सम्बंधित जानकारी होगी तो उससे मिलाप होगा न ! और ये

सब होगा कैसे, इस भेद को कौन बतायेगा ? आखिर क्युं इन्सान से इस भेद को छिपाया गया और इस का निवारण कैसे होगा ? कंई बार तो स्वंय भगवान काल निरंझन ने भी धरती पर अवतरित हो कर समाज की व्यवस्थाओं को सुचारू रूप से चलाने के लिये मर्यादाओं को समाज में स्थापित किया है। 'गीता' जैसे महान ग्रंथ के माध्यम से भी उन्होंने कुछ इशारा किया है कि कैसे ये जीव छुटकारा प्राप्त कर सकता है परन्तु मनुष्य के अंदर स्वंय के 'मन' रूप में स्थापित होने के कारण उन्होंने भी पूर्णतः इस भेद को नहीं खोला जिससे कि ये 'आत्मां' कहीं आज़ाद होने की और अग्रसर ना हो जाये। जैसे ही इस तरहं के विचार मनुष्य के अंदर पनपना प्रारम्भ होते हैं तो उसे पुनः धार्मिक ग्रंथों, गुरूओं, मठ मतांतरों,पंडित, पादरियों व मौलवियों देवी देवों के स्थानों द्वारा भरमा दिया जाता है और वह पुनः उसी चक्रव्यूह में धंसता चला जाता है। हांलाकि भगवान काल निरंझन ने तो मानव को नाना प्रकार के सुख सुविधाओं से सुसज्जित किया हुआ है, उसके खाने, पीने, रहने का उच्चतम से उच्चतम प्रबंध किया है, दुनियां भर के ऐशो आराम सहित जो उसने चाहा उसे दिया है, इसी के चलते अगर हम मनुष्य की बात करें तो वह इन सब वस्तुओं, सहुलतों और मज़ों में सम्मोहित हुआ इस कदर रम चुका है कि वह अपनी सुद्ध–बुद्ध, पहचान और अपना अस्तित्व तक भूले बैठा है। आज से करीब छेः सौ वर्ष पूर्व संतों के संत शिरोमणि साहिब कबीर जी ने ''साहिब सत्यपुरूष जी'' के सच्च संदेश को समाज में बांटा, परन्तु उस वक्त की अनेकों समस्याओं जैसे जात–पात, ऊंच–नीच की कुरीतियों, शासकों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों और अन्य कंई सामाजिक कू–प्रथाओं के चलते वे भी समाज के जीवों को अधिक जगा नहीं पाये। सच्च का ये संदेश इतने लम्बे काल से केवल एक भेद ही बन कर रह गया है। काल भगवन का प्रकोप कहें या उनकी माया का प्रभाव कि ऐसी परिस्थितियां ही नहीं बनती की कोई इस ओर सोचने का प्रयास भी करे। भगवान काल निरंझन का तीन–पांच–पच्चिस का पिंझरा इतनी कुशलता से अपने कार्य को अंजाम दे रहा है कि जीव बैचारा क्या करे, वह तो पूरी तरंह से इस की जकडऩ में कैद हुआ बैठा है। मानव चौले का निर्माण तो देखें, इसे तीन गुणों सत्तो गुण, तमो गुण और रजो गुण, पांच तत्वों अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु और आकाश सहित पच्चिस कर्म ईन्द्रियों, ज्ञान ईन्द्रियों और अंतःकरण की सूक्ष्म ईन्द्रियों द्वारा इतनी कुशलता से निर्मित किया है कि सारी की सारी व्यवस्थायें इनके नियंत्रण में सुचारू रूप से कार्य करें, इनके साथ–साथ तीन देव, और सभी देवी–देवता भी इस कार्य प्रणाली में अपना भरपूर सहयोग प्रदान कर रहे हैं। स्वंय काल भगवन

तो मनुष्य के अंदर ही 'मन' रूप में विद्यमान हो कर पहरा दे रहे हैं कि कहीं ये 'आत्म' इस कैद से छूट ना जाये। एक तरफ काल भगवन की इतनी विशाल सेना और दूसरी और 'हंसात्मां' आत्म रूप में अकेली ! साहिब सतगुरू परमहंस जी की वाणी अनुसार ये दौ टीमें इस त्रिलोकि रूपी मैदान में एक दूसरे के आमने सामने खड़ी हैं। 'हंसात्मां' को तो दरअसल इस त्रिलोकि में काल भगवन की टीम के साथ खेल खेलने और इस खेल को जीतने के लिये भेजा था। परन्तु काल भगवन की इतनी विशाल टीम के सामने 'हंसात्मां' अपने सामर्थय की ताकत को ना पहचान कर और अपने आप को अकेली जान कर बस अमूक दर्शक भर बन कर ही खड़ी रही और काल भगवन उसे अलग–अलग तरीकों से भ्रमित करके अपने वश में करते चले गये क्योंकि उन्हें भी इस 'आत्म' तत्व की महां चेतना की ऊर्जा का प्रयोग अपनी त्रिलोकि के समूचे कार्यों को भलि भांति चलाने के लिये करना था। अंततः 'हंसात्मां' आत्म रूप में इस 'मन–माया' के मोहपाष में बंधती चली गई और ऐसी स्थिति में आ पहुंची की वह अपने आप को अब इसी शरीर का ही एक हिस्सा मान रही है। ये शरीर तो पांच तत्वों से निर्मित होने के कारण नश्वर है और सभी तत्वों को मृत्यु उपरांत अपने–अपने तत्वों में जा समाना होता है। आत्मां तो अजर अमर अविनाषी है जो कि वास्तव में इन तीन लोकों का हिस्सा ही नहीं। इसे तो भ्रमण कराने हेतु यहां लाया गया था। विवशता वश ये यहीं की ही हो के रह गई। सबसे बड़ा धोखा ही 'हंसआत्मां' के साथ ये हुआ कि इससे इसकी पहचान तक पूर्णतः छुपा के रखी गई और इसे इसकी ताकतों से भी अन्जान रक्खा।

एक ऐसी व्यवस्था जिससे ये 'आत्म' तत्व अपने सभी प्रशणों का उत्तर पा कर काल जाल की कैद से छूट कर अपने निजघर अपने असली पिता के पास जा सके, इस भेद की जानकारी 'आत्म' तत्व तक कैसे पहुंचे और आत्म इस पर पूर्णतः भरौसा भी करे और वह भी उस स्थिति में जब स्वयं काल भगवन ही 'मन' रूप में उसके अंदर अनगिनत विचारों पे विचारों की सुनामी की निरंतर बरसात पल–पल दिये जा रहे हैं ताकि 'आत्म' इस और अग्रसित ही ना हो पाये। निष्चय ही कोई ऐसी ताकत चाहिये जो स्वयं काल भगवन की ताकत से उपर की सत्ता से सम्बंध रखती हो और काल भगवन की सत्ता से उपरी सत्ता तो केवल ''साहिब सत्यपुरूष जी'' की ही सत्ता हो सकती है। हालांकि स्वयं 'आत्म' भी 'हंसात्मां' रूप में सभी देवी देवताओं यहां तक कि काल भगवन से भी अधिक क्षमता रखती है परन्तु आवश्यकता है बस चेतन होने की, तंद्रा वृत्ति से जागने की, कचरों से निजात पाने की, लौभ लालसाओं, आशा–तृष्णाओं को त्यागने की,

ईच्छाओं को दमन करने की, अपने अस्तित्व को मिटा कर अपनी क्षमताओं को पहचानने की, परन्तु बुरी तरहं से ग्रस्त और ध्वस्त 'जीवात्मां' काल की वृत्तियों से अपने आप को कैसे बचा सकती है ? हमारे अंदर की तड़प और फरियाद सुनकर ही इसके लिये समय–समय पर ''साहिब सतपुरूष जी'' द्वारा इस संसार में सच्च का संदेश देने के लिये सम्पूर्ण संत परमहंस भेजे जाते रहे हैं और इस वक्त कोई परम संयोग समझें अथ्वा हमारा सौभाग्य अर्थात हमारे पूर्व जन्मों के अच्छे कर्मों का फल जिनके कारण इस वर्तमान काल में भी हमारे बीच निजधाम के सम्पूर्ण संत सतगुरू परमहंस 'वे नाम' साहिब जी ''साहिब सतपुरूष जी'' से विदेह ''वे नाम'' दात को उन्हीं की सुरति से सीघे ग्रहण कर के हम सब जग जीवों के उद्धार के लिये इस धरती पर उपलब्ध हैं और सारे संसार में अपना पहरा दे रहे हैं।

उन्हें ये दात कितने संघर्षों, प्रयत्नों, कुरबाणियों और पूरे जीवन की तपस्याओं के बल पर कैसे कैसे प्राप्त हुई है इस सब का उल्लेख भी उन्हीं द्वारा रचे गये ''वे नाम सुरति धारा'' के ग्रंथों व यु–टयूब में उपलब्ध है।

यह सब भौग इस वक्त जो हम इन तीनों लोकों में भौग रहे हैं यह सब माया जाल ही है, भ्रम ही है, सपने की ही भांति है। एक बड़ी विचित्र विडम्भना ज़रा देखिये आज भी लगभग 60 लाख संत पंजिकृत हैं संसार में जिनका काम ही समाज को सही दिशा प्रदान करना होता है परन्तु वास्तविकता में आज ठीक इसके विपरीत ही हो रहा है। वे तो समाज को विपरीत दिशा में भरमा कर अपने आप को श्रेष्ठ सिद्ध करते फिर रहे हैं और निरंतर लूट खसूट से अपनी जीविका चला कर सम्पत्तियां इक्कटठी करने में लगे हुऐ हैं। हम तो प्रेम को ढूंढने निकले थे ? प्रेम है क्या ? इस एहसास की जिज्ञासा जानने हेतु इस ओर बड़े थे ? हम कहीं भी थोड़ा समय व्यतीत करें, मन की वृत्तियों के अधीन होने के कारण मोह और आकर्षण से कैसे बच सकते हैं और सासांरिक दृष्टि्कोण के चलते हम इसे प्रेम ही की संज्ञा देना भी प्रारम्भ कर देते हैं। संसार में जीवन यापन की प्रक्रिया में प्रतिदिन एक दूसरे से मिलते–झुलते रहते हैं। रिश्तों की ग़रिमा का आभास होता है, मित्रता करते हैं, शादी ब्याह के संस्कारों में बंधते हैं, दुनियांदारी के रिश्तों में भी लेन–देन, व्योपार और व्यवहार करते दिखते हैं। अच्छा बनने और दिखने के लिये ऐड़ी चौटी तक का ज़ोर लगा देते हैं। जो होते हैं वह दिखते नहीं और जो नहीं होते वह

दिखने का प्रयत्न और प्रयास करते नज़र आते हैं। यहां तक की अपने स्वार्थ और लाभ की पूर्ती के लिये दूसरों की हानी और अहित करने से भी नहीं चूकते। झूठ तो पल–पल बोले चले जाते हैं। दूसरों का तो क्या अपने बड़ों, पूर्वजों और गुरूओं तक के सम्मान तक को भी दाव पर लगाने का परहेज़ नहीं करते। आखिर हम किस ओर अग्रसित हैं ? ये कलयुग और इसमें घटित होने वाले तमाम कृत्यों, कत्लों, पापों, साजिशों और हर ओर से दुषित वातावरणों के बीच हम 'प्रेम' की तलाश में निकले हैं ! सत्य ढूंढ रहे हैं ! शायद हम किसी ग़ल्त बस्ती में भटक गये हैं जहां किसी को बस मौका लगना चाहिये और वह अपना काम कर जायेगा। और हम कहते हैं कि इस बस्ती में हम प्रेम से रहें ? 'प्रेम' तो हम्हें कहीं दिखता नहीं, वह तो कहीं खो गया, लुप्त हुआ जान प्रतीत होता है। और अगर कहीं किसी से 'प्रेम' के विषय में कुछ कहने को कहा जाये तो दुनियां भर की पुस्तकों की पुस्तकें भरी पड़ी मिल जायें कि 'प्रेम' ऐसा होना चाहिये, 'प्रेम' वैसा होना चाहिये। इस झूठ और स्वार्थ भरी नगरी में 'प्रेम कहां' ! किसी को किसी की परवाह तक नहीं, कद्र ही नहीं। कुछ भी क्युं ना हो जाये कोई किसी की सहायता के लिये आगे नहीं आना चाहता।

ऐसा क्युं होता है ? ये जानना भी अति आवश्यक है ! क्युं जानना है ? उद्धेष्य क्या है ? और इसका उत्तर कहां मिलेगा ? बिमारी का पता लगेगा तो ही तो ईलाज हो पायेगा न ! ये सब जानने के लिये प्रार्थना है कि ''वे नाम सुरति धारा'' द्वारा रचित ग्रंथ अमर सागर अवश्य पढ़ें। ''वे नाम सुरति धारा'' से ओत–प्रोत 'संत सतगुरू परमहंस 'वे नाम' साहिब जी द्वारा रची गयी आलोकिक अदभुत अतुल्नीय श्रृंखला जिसमें अनेकों हज़ारों दोहे, काव्य, भजन और आध्यात्मिक सच्चाई पर आधारित उनके स्वयं के अनुभवों से भरपूर सफरनामों सहित ग्रंथ और सुरति से ओत–प्रोत पुस्तकें जिनमें किसी भी जिज्ञासु की जिज्ञासाओं का सम्पूर्ण समाधान विस्तृत जानकारी के साथ दर्शाया गया है। काल भगवन की त्रिलोकि सत्ता से परे सहज सत्य भक्ति मार्ग पर आधारित मोक्ष के भेद और सत्य के भेद को बड़े ही सुन्दर और सहज ढंग से सतगुरू साहिब परमहंस 'वे नाम' जी द्वारा ''साहिब सत्यपुरूष जी'' हमारे असली पिता की सुरति द्वारा ग्रहण करके ही प्रस्तुत किया गया है। किसी भी समस्या का समाधान इस पर निर्भर करता है कि कितनी जिज्ञासा भरोसे और तत्परता से हम उस के बारे में जानने के ईच्छुक हैं। क्या हमारे अंदर उस वस्तु को पाने की लगन, चाह और तड़प है ? क्या हम समस्या के तय तक जा कर उसे पाने की क्षमता रखते हैं ? उसे पाने के लिये क्या हम पूरी तरहं से श्रद्धा व समर्पण कर पायेंगे ? भरोसा और विश्वास रख पायेंगे ? इस सब को पाने के

लिये क्या हम अपने अहम और पुरानी मान्यताओं, भ्रांतियों और रूढ़ीवादिताओं को तज कर एक नयी दिशा पर चलने का साहस झुटा पायेंगे ? पर इससे भी पहले हमें अपने आप को जानने की आवश्यकता है कि हम कौन हैं ? और हमारा अस्तित्व क्या है ? इस मन और माया नगरी में क्या वास्तव में काल भगवन हमारे पिता हैं ? अथ्वा हम्हें अपने जीवन मूल्यों का आंकलन कर के अपने अंधविश्वासों को तज कर अपने 'अंतरात्मां' और सुरति की आवाज़ को सुनना चाहिये और अगर हमें इस बहुमूल्य जीवन के लक्ष्य के बारे में जानकारी प्राप्त करनी है तो क्या किसी ऐसे मार्ग दर्शक की खोज नहीं करनी चाहिये जो स्वयं अपने अनुभवों के आधार पर सब कुछ जानता हो, सामर्थवान हो और इस भेद को भलिभांति हमारे समक्ष उजागर कर पाये ? तो हमें तय करना होगा कि हमें सच्च की राह का पता लगा कर उस मार्ग पर अग्रसर होना चाहिये अथ्वा नहीं ! और उसी सच्च के भेद को बताने के लिये ही संत सतगुरू परमहंस संसार में आते रहते हैं।

सत्य की खोज जिससे हम अपने गणतव्य को प्राप्त हो सकें, हमारी तड़प और जिज्ञासा का ही प्रमाण है कि हम सतगुरू साहिब परमहंसों की शरण में पहुंच पाते हैं। 'हंसात्मां' की सुरति का ''साहिब सतपुरूष जी'' की सुरति से मिलाप ही सत्य है। जो कि बिना किसी सम्पूर्ण साहिब परमहंस के संभव ही नहीं, क्योंकि वे ''वे नाम'' सार दात को हमारे असली पिता ''साहिब सतपुरूष जी'' की सुरती द्वारा सीधे उन्हीं से ही प्राप्त किये होते हैं। इस आलोकिक सत्य के भेद को इससे बड़ कर और कौन इस संसार में हम्हें बता सकता है ? परन्तु इसके लिये हमारे अंदर कितनी श्रद्धा उमड़ रही है इस पर निर्भर करता है अर्थात इसके लिये हमें अगर अपने अस्तित्व को भी दाव पे लगा कर अपना सर्वस्व सतगुरू साहिब परमहंस जी के चरणों में अर्पण करना पड़े तो भी हमें पीछे नहीं हटना चाहिये, अपनी सारी ईच्छाओं को तजना क्युं ना पड़े, इस सब के लिये हमें तैयार रहना है। अगर हम अपने परमपिता साहिब सतपुरूष, अपने प्रीयतम की चाह में अपने सतगुरू साहिब जी के चरणों में तन–मन–धन लुटाने के लिये तैयार हैं तो आप बधाई के पात्र हैं। सतगुरू जी के आदेशों का पालन करते हुए अगर आप सच के संग अपनी दिनचर्या और जीवन यापन कर रहे हैं तो आप 'प्रेम' की राह की ओर अग्रसर हैं। प्रेम लिखने का विषय नहीं है। अपने अंदर इस एहसास को उजागर और प्रकट कर के मर मिटने को तैयार होने का नाम 'प्रेम' है। अपनी हस्ती समाप्त कर के पतंगे कीट की भांति लौ में जल कर भस्म हो कर उसी की लौ में समा जाने का नाम प्रीत है।

अंतर सुरति द्वार में रोम–रोम में हर पल सतगुरू चरणों में अपना सर्वस्व न्योछावर करना ही प्रीत को पाना है। जैसे संत मीरां जी ने प्रेम की गाथाओं को अपने सतगुरू चरणों में प्रीत द्वारा ही अर्पण करके समाज को प्रेरित किया है, जगत उनके समर्पण को कैसे दरकिनार कर सकता है ? महान कवि सूरदास की प्रेम गाथा और उनके नैनों की त्याग भावना को कैसे भुलाया जा सकता है। सामाजिक व जिस्मानी प्रेम और इससे जुड़े स्वार्थ भरे कृत्यों को तो कदापि 'प्रेम' जैसी दिव्य पवित्र अनुभूति से नहीं जोड़ा जा सकता। आईये हम प्रेम की परिभाषा को थोड़ा और विस्तृत स्वरूप में देखते हैं। सांसारिक दृष्टि्कोण को अगर हम आंके तो आज के समय में प्रेम को अनगिनत स्वरूपों में समाज में प्रस्तुत किया गया है। भगवान कृष्ण जी का विदुराईन संग प्रेम प्रसंग अति अदभुत भाव प्रकट करता है। भगवान कृष्ण जी के मीरां प्रेम की गाथा भी तो जगत में प्रेम की दिव्यता को बखूबी दर्शाती हैं। भगवान राम व शबरी का प्रेम प्रसंग भी प्रेम की प्रकाष्ठता उजागर करता है। संसार में अनेकों ऐसे उदाहरण जैसे लैला–मजनु, शीरी–फरहाद, सस्सी–पुन्नु, हीर–रांझा, सोहनी–महिवाल व अन्य कंई प्रेम से भरपूर गाथायें हैं समाज में प्रेम की दिव्यता को उजागर करने के लिये।

अभी हाल ही में 18 मार्च, 2021 को संत सतगुरू साहिब परमहंस 'वे नाम' जी की परम शिष्या 'नीना दूध वाली' की अविस्मरणीय मिसाल प्रेम के आलोकिक उदाहरण संदेश और जगत के लिये प्रेरणा का स्त्रोत बनी है। उनकी इस प्रीत की बरसात ने तो साहिब सतगुरू जी की 'तपो–भूमि' जो की रिहाड़ी आश्रम में स्थित है की महिमां को जैसे चार चांद लगा दिये हैं। इसी तपो–भूमि की गाथा के भी अनेकों किस्से साहिब सतगुरू जी के आलोकिक प्रेम का अदभुत प्रतीक हैं। जो कि समूचे संसार में सबसे सर्वश्रेष्ठ उत्तम आध्यात्मिक मूल्यों का भी प्रतीक है। कोई भी जिज्ञासू अगर पूर्ण श्रद्धा और समर्पण भाव से इस स्थान पर अपना शीष निवायेगा, अपने आध्यात्मिक मूल्यों के आधार पर वह यहां से कभी भी खाली वापिस नहीं जा सकता। साहिब सतगुरू परमहंस जी को साहिब सतपुरूष जी से ''वे नाम'' सुरति दात के रूप में एक महानतम खज़ाना प्राप्त हुआ है जिससे कोई भी अमीर से अमीर और उच्च से उच्चतम अवस्था को प्राप्त हो सकता है। ''वे नाम सुरति धारा'' कोई मत्त, धर्म, पंथ व झूठी मान्याताओं, भ्रांतियों व धाराणाओं पर आधिरित नहीं हैं अपितु ये सीधे ही सतलोक से सतगुरू परमहंस जी की चेतन सुरति में निरंतर प्रवाहित हो रही है अर्थात ''साहिब सतपुरूष'' रूप में ही साक्षात सतगुरू परमहंस 'वे नाम' साहिब जी इस धरती पर विराजमान हैं।

जिस प्रकार भक्ति के अनेकों स्वरूपों में बंटने के कारण कोई मनुष्य भी भक्ति के असल स्त्रोत तक पहुंच ही नहीं पाता है, जिस किसी को भी देखो किसी ना किसी ढंग से वह 'मन' की ही भक्ति अलग–अलग ढंगों से करता हुआ दिखता है और हम तो 'मन' हैं नहीं अपितु 'आत्मां' हैं और इसमें से भी 'मन' की शेष वृतियों को निकाल कर हम किसी पूर्ण संत सतगुरू परमहंस जी की कृपा से 'हंसात्मां' बन पाते हैं। क्योंकि 'आत्म रूप' तो 'मन' (काल भगवन) ने प्रदान किया है 'हंसा' को। और फिर 'आत्मां' का समस्त त्रिलोकि में कोई स्त्रोत दिखता ही नहीं। 'हंसा' तो अजर अमर अविनाषी है जो कभी नाष ही नहीं होता और जो नाष नहीं होता वही तो सच्च है, अन्यथा बाकी तो सब झूठ है, मिथ्या है, भ्रम है। और जहां सच्च विद्यमान होता है वहीं तो 'प्रेम' प्रकट होता है। जिस प्रकार भक्ति के विषय में सब स्वच्छ दिखाई देता है कि :–

भक्ति भक्ति सब जगत बखाना, भक्ति भेद कोई बिरला जाना।
भक्ति भेद जानेगा सोहि, जाका पूर्ण सतगुरू होई।।

ठीक उसी प्रकार 'प्रेम' भी तो समस्त संसार में कभी–कभार ही दिखाई प्रतीत होता है क्युंकि प्रेम मयी व्यक्ति के गुण–भाव तो इस स्वार्थी संसार में किस के अंदर मिल सकते हैं, उसी के अंदर न जो अपनी हस्ती को मिटाना जानता हो, किसी की भी सहायता के लिये निस्वार्थ भाव से हर पल तैयार रहे, परहित कार्य में संलग्न रहने की कूव्वत रखता हो। प्रेम प्रीत के भावों को ''वे नाम सुरति धारा'' की विचारधारा के और कौन व्यक्त कर सकता है क्योंकि ये प्रवाह सीधे हम सब के पिता ''साहिब सतपुरूष जी'' की सुरति से साहिब सतगुरू परमहंस 'वे नाम' जी की सुरति द्वारा समस्त संसार की ओर प्रवाहित हो रहा है। जिस प्रकार सच्च का स्त्रोत निजधाम ही है, उसी प्रकार 'प्रेम' भी तो सच्च ही का अंश है, ''साहिब सतपुरूष जी'' का ही अंश है। इसलिये दिव्य प्रेम की प्राप्ति के लिये साहिब सतगुरू परमहंस 'वे नाम' जी के पास ही आना पड़ेगा ! उनके समकक्ष पूर्ण समर्पण करना होगा ! भगवान काल निरंकार निरंझन की कैद से छूटकर अपने पिता के घर निजधाम अमरलोक जाना होगा जो कि बिना ''वे नाम'' सुरति दात के संभव ही नहीं।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि अगर हम सभी जगत वासी 'प्रेम' को पाना

चाहिते हैं, सच्च को जानना चाहते हैं, काल जाल से बाहर आना चाहते हैं, आनंद और शांति को पाना चाहते हैं तो हमें सर्व प्रथम स्वयं को जानना होगा, जिसके लिये सतगुरू पूर्ण संत साहिब परमहंस 'वे नाम' जी की शरण में आकर सार सब्द ''वे नाम'' दात को पाकर उनके बताये मार्ग पर अग्रसित होकर, सहज भक्ति मार्ग के नियमों का पालन करते हुऐ, सब्द स्वांसा सुरति को ईक–मिक कर के, सुश्मिना चेतन करते हुऐ, दसों पवनों को सुरति द्वारा उपर की ओर उठा कर सातों सुरति को एकत्रित करते हुऐ आज्ञा चक्र में पहुंचना है जहां पहले से ही हमारी बाट जोहते हुऐ सतगुरू साहिब परमहंस जी हमें प्राप्त होंगे। उसके बाद उन्हीं संग सहस्त्रार को पार करके सुरत कमल की ओर प्रस्थान करना है जहां से फिर आगे निजधाम के सफर का आगाज़ होता है।

इस सच–प्रेम–शांति और आनंद के अनुभवों को प्राप्त करते ही हम अपने गणतव्य को प्राप्त होते हैं जहां से फिर आवागमण के चक्र में मनुष्य कभी नहीं फंसता।

—0—